

Chapter नौ

अंशुमान की वंशावली

इस अध्याय में अंशुमान से खट्वांग तक का इतिहास दिया गया है और यह भी बतलाया गया है कि भगीरथ किस तरह इस धरती पर गंगाजी को लाये।

महाराज अंशुमान का पुत्र दिलीप था जिसने गंगा को इस जगत में लाने का प्रयास किया, किन्तु वह बिना सफलता के चल बसा। दिलीप के बेटे भगीरथ ने गंगा को इस जगत में लाने का दृढ़ संकल्प किया जिसके लिए उसे कठोर तपस्या करनी पड़ी। माता गंगा उसकी तपस्या से पूर्णतया संतुष्ट हुई तो उन्होंने उसे दर्शन दिया और वर देना चाहा। तब भगीरथ ने उनसे अपने पितरों का उद्धार करने की प्रार्थना की। माता गंगा ने पृथ्वी पर आने के लिए दो शर्तें रखीं—एक तो यह कि उनकी तरंगों को वश में करने वाला कोई उपयुक्त पुरुष हो और दूसरी यह कि सारे पापी गंगा में स्नान करके अपने पापकर्मों के फलों से तो मुक्त हो जायेंगे, किन्तु माता गंगा उन सबके पापकर्मों के फलों को अपने अन्दर रखना नहीं चाहती थीं। इन दोनों शर्तों पर विचार किया जाना था। भगीरथ ने माता गंगा से कहा, “भगवान् शिव आपके जल की लहरों को पूरी तरह वश में कर सकेंगे और जब शुद्ध भक्तगण आपके जल में स्नान करेंगे तो पापियों द्वारा छोड़े गये पापों के फलों का निराकरण हो जायेगा।” तत्पश्चात् भगीरथ ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए तपस्या की। शिवजी आशुतोष कहलाते हैं क्योंकि वे सरलता से प्रसन्न किये जा सकते हैं। शिवजी ने गंगा के वेग को रोकने का भगीरथ का प्रस्ताव मान लिया। इस तरह गंगा के स्पर्शमात्र से भगीरथ के पूर्वज तर गये और स्वर्गलोक को चले गये।

भगीरथ का पुत्र श्रुत था, श्रुत का पुत्र नाभ और नाभ का पुत्र सिंधुद्वीप हुआ। उसका पुत्र अयुतायु हुआ जिसका पुत्र ऋतूपर्ण था जो नल का मित्र था। ऋतूपर्ण ने ही नल को द्यूतविद्या सिखलाई और उससे अश्वविद्या सीखी। ऋतूपर्ण का पुत्र सर्वकाम, सर्वकाम का पुत्र सुदास और सुदास का पुत्र सौदास हुआ। सौदास की पत्नी का नाम दमयन्ती या मदयन्ती था। सौदास का अन्य नाम कल्माषपाद था। उसके सकाम कर्मों में किसी त्रुटि के कारण वसिष्ठ ने उसे राक्षस बनने का शाप दे दिया था। एक जंगल में से गुजरते हुए उसने एक ब्राह्मण और उसकी पत्नी को संभोगरत देखा। क्योंकि वह राक्षस बन चुका था, अतः उसने उस

ब्राह्मण को खा जाना चाहा। यद्यपि ब्राह्मणपत्नी ने सौदास से बहुत अनुनय-विनय की, किन्तु वह ब्राह्मण को खा गया। फलतः उसकी पत्नी ने उस राक्षस को शाप दिया, “तुम संभोगरत होते ही मर जाओगे।” इस तरह बारह वर्ष बाद वसिष्ठ के शाप से मुक्त होने पर भी सौदास निःसन्तान रहा। तब सौदास की अनुमति से वसिष्ठ ने उसकी पत्नी मदयन्ती को गर्भवती बनाया। किन्तु जब वर्षों गर्भधारण करते रहने पर भी मदयन्ती के सन्तान नहीं हुई तो वसिष्ठ ने उसके उदर पर पत्थर से प्रहार किया। इस प्रकार एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम था अश्मक।

अश्मक का पुत्र बालिक कहलाया। वह परशुराम के शाप से इसलिए बच गया क्योंकि वह अनेक स्त्रियों से घिरा हुआ था। इसीलिए वह नारीकवच भी कहलाता है। जब सारा जगत क्षत्रियविहीन हो गया था तो उसने अनेक क्षत्रियों को जन्म दिया। इसीलिए वह कभी-कभी मूलक भी कहलाता है। बालिक का पुत्र दशरथ हुआ और दशरथ का पुत्र ऐडविडि हुआ जिसका पुत्र विश्वसह हुआ। इसी विश्वसह के पुत्र-रूप में महाराज खट्वांग हुए। उन्होंने देवताओं के साथ मिलकर असुरों से युद्ध किया और विजय प्राप्त की। फलतः देवताओं ने उन्हें वर देना चाहा। इस पर उन्होंने पूछा कि वे कितने काल तक जीवित रहेंगे? और जब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका जीवन कुछ ही क्षण बाकी है तो वे स्वर्ग छोड़कर विमान से अपने धाम चले आये। वे यह समझ गये कि इस जगत की हर वस्तु तुच्छ है अतः वे पूरी तरह से भगवान् हरि की पूजा में लग गये।

श्रीशुक उवाच

अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया ।

कालं महान्तं नाशक्नोत्ततः कालेन संस्थितः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अंशुमान्—अंशुमान राजा ने; च—भी; तपः तेपे—तपस्या की; गङ्गा—गंगा नदी; आनयन-काम्यया—अपने पूर्वजों का उद्धार करने के लिए गंगा को इस भौतिक जगत में लाने की इच्छा से; कालम्—काल; महान्तम्—दीर्घकाल तक; न—नहीं; अशक्नोत्—सफल हुआ; ततः—तत्पश्चात्; कालेन—समय आने पर; संस्थितः—मर गया।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : राजा अंशुमान ने अपने पितामह की तरह दीर्घकाल तक तपस्या की तो भी वह गंगा नदी को इस भौतिक जगत में न ला सका और उसके बाद कालक्रम में उसका देहान्त हो गया।

दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् ।
भगीरथस्तस्य सुतस्तेपे स सुमहत्तपः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

दिलीपः—दिलीप; तत्-सुतः—अंशुमान का पुत्र; तत्-वत्—अपने पिता की भाँति; अशक्तः—गंगा को इस जगत में ला सकने में असमर्थ; कालम् एयिवान्—काल का शिकार हुआ और मर गया; भगीरथः तस्य सुतः—उसके पुत्र भगीरथ ने; तेपे—तपस्या की; सः—वह; सु-महत्—बहुत बड़ी; तपः—तपस्या ।

अंशुमान की भाँति उसका पुत्र दिलीप भी गंगा को इस भौतिक जगत में ला पाने में असमर्थ रहा और कालक्रम में उसकी भी मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् दिलीप के पुत्र भगीरथ ने गंगा को इस भौतिक जगत में लाने के लिए अत्यन्त कठिन तपस्या की।

दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदास्मि ते ।
इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

दर्शयाम् आस—प्रकट हुई; तम्—उसको, भगीरथ को; देवी—माता गंगा; प्रसन्ना—अत्यन्त प्रसन्न होकर; वरदा अस्मि—मैं वर दूँगी; ते—तुमको; इति उक्तः—इस प्रकार सम्बोधित करके; स्वम्—अपनी; अभिप्रायम्—इच्छा; शशंस—बतलायी; अवनतः—आदरपूर्वक झुककर प्रणाम करके; नृपः—राजा (भगीरथ) ने।

तत्पश्चात् माता गंगा राजा भगीरथ के समक्ष प्रकट होकर बोलीं, “मैं तुम्हारी तपस्या से अत्यधिक प्रसन्न हूँ और तुम्हें मुँहमाँगा वर देने को तैयार हूँ।” गंगादेवी द्वारा इस प्रकार सम्बोधित हुए राजा ने उनके समक्ष अपना सिर झुकाया और अपना मन्तव्य बतलाया।

तात्पर्य : राजा का मन्तव्य अपने उन पूर्वजों का उद्धार कराना था जो कपिल मुनि का अनादर करने के कारण भस्म हो गये थे।

कोऽपि धारयिता वेगं पतन्त्या मे महीतले ।
अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

कः—वह कौन व्यक्ति है; अपि—निस्सन्देह; धारयिता—धारण कर सकता है; वेगम्—तरंगों के वेग को; पतन्त्याः—नीचे गिरती हुई; मे—मेरे; मही-तले—पृथ्वी पर; अन्यथा—अन्यथा; भू-तलम्—पृथ्वी की सतह; भित्त्वा—भेदकर; नृप—हे राजा; यास्ये—नीचे चली जाऊँगी; रसातलम्—पाताल ।

माता गंगा ने उत्तर दिया: जब मैं आकाश से पृथ्वीलोक के धरातल पर गिरूँगी तो मेरा जल अत्यन्त वेगवान होगा। इस वेग को कौन धारण कर सकेगा? यदि कोई मुझे धारण नहीं कर सकेगा

तो मैं पृथ्वी की सतह को भेदकर रसातल में अर्थात् ब्रह्माण्ड के पाताल क्षेत्र में चली जाऊँगी।

किं चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम् ।
मृजामि तदघं क्वाहं राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

किम् च—भी; अहम्—मैं; न—नहीं; भुवम्—पृथ्वीलोक को; यास्ये—जाऊँगी; नराः—लोग; मयि—मुझमें, मेरे जल में; आमृजन्ति—धोते हैं; अघम्—पापकर्मों के फल; मृजामि—धो सकूँ; तत्—वह; अघम्—पापकर्मों के फलों का संग्रह; क्व—किसको; अहम्—मैं; राजन्—हे राजा; तत्र—इस बात पर; विचिन्त्यताम्—ध्यान से विचार करके निर्णय करो।

हे राजा, मैं पृथ्वीलोक पर नहीं उतरना चाहती क्योंकि सभी लोग अपने पापकर्मों के फलों को धोने के लिए मुझमें स्नान करेंगे। जब ये सारे पापकर्मों के फल मुझमें एकत्र हो जायेंगे तो मैं उनसे किस तरह मुक्त हो सकूँगी? तुम इस पर ध्यानपूर्वक विचार करो।

तात्पर्य : स्वयं भगवान् का कथन है (भगवद्गीता १८.६६)—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

“सारे धर्मों का परित्याग करके मेरी शरण में आओ। मैं सारे पापों से तुम्हारा उद्धार कर दूँगा। डरो मत।” भगवान् किसी भी व्यक्ति के पापों के फलों को ग्रहण करके उनका निराकरण कर सकते हैं क्योंकि वे सूर्य के समान पवित्र हैं जो कभी भी सांसारिक स्पर्श से दूषित नहीं होता। *तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा* (भगवत् १०.३३.२९)। जो अत्यन्त शक्तिमान है वह किसी पापकर्म से दूषित नहीं होता। किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि माता गंगा उन लोगों के पाप से बोझिल होने से भयभीत हैं जो गंगाजल में स्नान करेंगे। इससे सूचित होता है कि भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति अपने या अन्यो के पापकर्मों के फलों को दूर करने में समर्थ नहीं है। कभी-कभी गुरु को शिष्य बनाने के बाद उस के विगत पापकर्मों का भार ग्रहण करना पड़ता है; फलस्वरूप पापों से बोझिल हो जाने के कारण उसे कष्ट भोगना पड़ता है—पूरी तरह नहीं तो आंशिक रूप में—अतएव शिष्य को चाहिए कि दीक्षा ग्रहण करने के बाद पापकर्म करने के प्रति सतर्क रहे। बेचारा गुरु शिष्य को स्वीकार करते समय अत्यन्त कृपालु रहता है और शिष्य के पापकर्मों को अंशतः भोगता है, किन्तु भगवान् अपने दास पर कृपालु होने के कारण उस दास के पापकृत्यों के फलों का निराकरण कर देते हैं जो उनकी महिमा का प्रचार करने में लगा रहता है। माता गंगा

भी लोगों के पापों के फलों से भयभीत होने के कारण चिन्तित थीं कि वे इन पापों के भार को किस तरह वहन कर सकेंगी।

श्रीभगीरथ उवाच

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात्तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगीरथः उवाच—भगीरथ ने कहा; साधवः—सन्तपुरुष; न्यासिनः—संन्यासीजन; शान्ताः—शान्त, भौतिक झंझटों से मुक्त; ब्रह्मिष्ठाः—वैदिक शास्त्रों के अनुष्ठानों का पालन करने में पटु; लोक-पावनाः—पतित अवस्था से लोगों का उद्धार करने में संलग्न; हरन्ति—दूर करेंगे; अघम्—पाप के फल; ते—तुम्हारा (गंगा का); अङ्ग-सङ्गात्—गंगाजल में नहाने से; तेषु—अपने में; आस्ते—हैं; हि—निस्सन्देह; अघ-भित्—सारे पापों को हरने वाले; हरिः—भगवान्।

भगीरथ ने कहा : जो भक्ति के कारण सन्त प्रकृति के हैं और भौतिक इच्छाओं से मुक्त संन्यासी बन चुके हैं, तथा जो वेदवर्णित अनुष्ठानों का पालन करने में पटु हैं और शुद्ध भक्त हैं वे सर्वदा महिमामंडित हैं और शुद्धाचरण वाले हैं तथा सभी पतितात्माओं का उद्धार करने में समर्थ हैं। जब ऐसे शुद्ध भक्त आपके जल में स्नान करेंगे तो अन्य लोगों के संचित पापों के फलों का निश्चय ही निराकरण हो सकेगा क्योंकि ऐसे भक्तगण उन भगवान् को अपने हृदयों में सदा धारण करते हैं जो सारे पापों को दूर कर सकते हैं।

तात्पर्य : माता गंगा स्नान के लिए सबों को सुलभ हैं। अतएव गंगाजल में न केवल पापी लोग स्नान करेंगे अपितु हरद्वार तथा अन्य तीर्थस्थलों में जहाँ से होकर गंगा बहती है, सन्तजन तथा भक्तगण भी गंगाजल में स्नान करेंगे। भक्तगण तथा संन्यासीजन गंगा तक का उद्धार कर सकते हैं। तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता (भागवत १.१३.१०)। चूँकि सन्त भक्तजन सदैव भगवान् को अपने हृदय में धारण करते हैं अतएव वे तीर्थस्थानों को, सारे पापों के फलों को पूरी तरह धो कर, शुद्ध कर सकते हैं। अतएव सामान्य लोगों को चाहिए कि सन्तपुरुषों का सदैव आदर करें। ऐसा आदेश है कि किसी भी वैष्णव या संन्यासी का दर्शन होने पर उनका तुरंत आदर किया जाय। यदि आदर करने में भूल हो जाय तो उस दिन उपवास रखा जाय। यह वैदिक आदेश है। मनुष्य को चाहिए कि भक्त या सन्त के चरणकमलों के प्रति अपराध करने से अत्यन्त सतर्क रहे।

यद्यपि प्रार्थना की विधियाँ हैं, किन्तु वे पापों के फलों को धोने में अपर्याप्त हैं। मनुष्य केवल भक्ति

द्वारा सारे पापों के फलों से छूट सकता है जैसा कि अजामिल की कथा में कहा गया है—

केचित् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ।

अघं धुन्वन्ति कात्स्न्येन नीहारं इव भास्करः ॥

“केवल ऐसा व्यक्ति, जिसने कृष्ण की अनन्य भक्ति ग्रहण की होती है, पापकर्म रूपी खरपतवारों को समूल नष्ट कर सकता है ताकि वे पुनः न उभर आएँ। जिस तरह सूर्य अपनी किरणों से कुहरे को तुरन्त विनष्ट कर देता है उसी प्रकार मनुष्य भक्ति के द्वारा ऐसा कर सकता है।” (भागवत ६.१.१५) । यदि कोई व्यक्ति किसी भक्त के प्रश्रय में रहता है और निष्ठापूर्वक उसकी सेवा करता है तो वह भक्तियोग के द्वारा सारे पापकर्मों के फलों को नष्ट कर सकने में समर्थ होता है।”

धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् ।

यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तन्तुषु ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

धारयिष्यति—धारण करेगा; ते—तुम्हारे; वेगम्—तरंगों के वेग को; रुद्रः—शिवजी; तु—निस्सन्देह; आत्मा—परमात्मा; शरीरिणाम्—समस्त शरीरधारियों का; यस्मिन्—जिसमें; ओतम्—देशान्तर, ताना; इदम्—यह सारा ब्रह्माण्ड; प्रोतम्—अंक्षाश बना; विश्वम्—सारा विश्व; शाटी—वस्त्र; इव—सदृश; तन्तुषु—डोरों में।

जिस प्रकार वस्त्र के सारे डोरे लम्बाई तथा चौड़ाई में गुँथे रहते हैं, उसी तरह यह समग्र विश्व अपने अक्षांश-देशान्तरों सहित भगवान् की विभिन्न शक्तियों में स्थित है। शिवजी भी भगवान् के अवतार हैं अतएव वे देहधारी जीव में परमात्मा का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे अपने सिर पर आपकी वेगवान तरंगों को धारण कर सकते हैं।

तात्पर्य : गंगाजल भगवान् शिव के सिर पर स्थित माना जाता है। शिवजी भगवान् के अवतार हैं जो विभिन्न शक्तियों से सारे विश्व को धारण करते हैं। ब्रह्म-संहिता में (५.४५) शिवजी का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

क्षीरं यथा दधि विकारविशेषयोगात्

सञ्जायते न हि ततः पृथगस्ति हेतोः ।

यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्याद्

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“जब दूध में जामन डाला जाता है तो यह दही में बदल जाता है, किन्तु वास्तव में यह दही दूध के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। इसी प्रकार भगवान् गोविन्द भौतिक व्यवहार के निमित्त भगवान् शिव का रूप धारण करते हैं। मैं भगवान् गोविन्द के चरणकमलों को सादर नमस्कार करता हूँ।” शिवजी उसी प्रकार भगवान् हैं जिस प्रकार दही दूध भी है और नहीं भी है। भौतिक जगत के पालन हेतु ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर (शिव)—ये तीन अवतार हैं। शिवजी विष्णु के तमोगुणी अवतार हैं। यह जगत प्रधानतः तमोगुणी है। इसीलिए शिवजी की उपमा यहाँ सारे विश्व के अक्षांश-देशान्तर से दी गई है जो वस्त्र के तानों-बानों के समान होते हैं।

इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसातोषयच्छिवम् ।
कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशश्चाश्रुतुष्यत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

इति उक्त्वा—यह कहकर; सः—उस; नृपः—राजा (भगीरथ) ने; देवम्—शिव को; तपसा—तपस्या द्वारा; अतोषयत्—प्रसन्न किया; शिवम्—सर्वकल्याणकारी शिव को; कालेन—समय आने पर; अल्पीयसा—अल्पकालीन; राजन्—हे राजा; तस्य—उस (भगीरथ) का; ईशः—शिवजी; च—निस्सन्देह; आशु—तुरन्त; अतुष्यत—तुष्ट हो गये।

ऐसा कहने के बाद भगीरथ ने तपस्या करके शिवजी को प्रसन्न किया। हे राजा परीक्षित, शिवजी शीघ्र ही भगीरथ से तुष्ट हो गये।

तात्पर्य : आश्रुतुष्यत शब्द सूचित करता है कि शिवजी तुरन्त तुष्ट हो गये; इसीलिए शिवजी का अन्य नाम आशुतोष है। भौतिकतावादी लोग शिवजी के प्रति इतने अनुरक्त इसीलिए रहते हैं क्योंकि वे भक्तों के सुख-दुख का विचार किये बिना तुरन्त ही हर एक को वर दे देते हैं। यद्यपि भौतिकतावादी लोग यह जानते हैं कि भौतिक सुख एवं दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं फिर भी वे सुख की कामना करते हैं और इसे तुरन्त पाने के लिए शिवजी को पूजते हैं। हम देखते हैं कि ऐसे भौतिकतावादी लोग सामान्यतया अनेक देवताओं की, विशेष रूप से शिवजी तथा माता दुर्गा की, पूजा करते हैं। वे आध्यात्मिक सुख की कामना नहीं करते क्योंकि यह उनको लगभग अज्ञात है। किन्तु यदि कोई सचमुच आध्यात्मिक सुख चाहता है तो उसे भगवान् विष्णु की शरण ग्रहण करनी चाहिए क्योंकि स्वयं भगवान् चाहते हैं कि—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

“सारे धर्मों का परित्याग करके मेरी शरण ग्रहण करो। मैं सारे पापों से तुम्हारा उद्धार करूँगा। तुम डरो मत।” (भगवद्गीता १८.६६)

तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः ।
दधारावहितो गङ्गां पादपूतजलां हरेः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तथा—एवमस्तु; इति—इस प्रकार; राज्ञा अभिहितम्—राजा द्वारा कहे जाने पर; सर्व-लोक-हितः—भगवान् जो सबों का कल्याण करने वाले हैं; शिवः—भगवान् शिव ने; दधार—धारण किया; अवहितः—ध्यानपूर्वक; गङ्गाम्—गंगा को; पाद-पूत-जलाम् हरेः—भगवान् विष्णु के अँगूठे से निकलने के कारण, जिसका जल दिव्य रूप से शुद्ध है।

जब राजा भगीरथ शिवजी के पास गये और उनसे गंगा की वेगवान लहरों को धारण करने के लिए प्रार्थना की तो शिवजी ने एवमस्तु कहते हुए प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। तब उन्होंने अत्यन्त ध्यानपूर्वक गंगा को अपने सिर पर धारण कर लिया क्योंकि भगवान् विष्णु के अँगूठे से निकलने के कारण गंगा का जल शुद्ध करने वाला है।

भगीरथः स राजर्षिर्निये भुवनपावनीम् ।
यत्र स्वपितृणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥ १० ॥

शब्दार्थ

भगीरथः—भगीरथ; सः—वह; राज-ऋषिः—सन्त राजा; निये—ले गया या लाया; भुवन-पावनीम्—सारे ब्रह्माण्ड का उद्धार करने वाली गंगा को; यत्र—जिस स्थान पर; स्व-पितृणाम्—अपने पितरों के; देहाः—शरीर; भस्मीभूताः—जलकर राख हुए; स्म शेरते—पड़े हुए थे।

महान् एवं साधु राजा भगीरथ समस्त पतितात्माओं का उद्धार करने वाली गंगाजी को पृथ्वी पर उस स्थान में ले गये जहाँ उनके पितरों के शरीर भस्म होकर पड़े हुए थे।

रथेन वायुवेगेन प्रयान्तमनुधावती ।
देशान्पुनन्ती निर्दग्धानासिञ्चत्सगरात्मजान् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

रथेन—रथ पर; वायु-वेगेन—हवा की गति से चलते हुए; प्रयान्तम्—आगे-आगे चलते महाराज भगीरथ; अनुधावती—पीछे-पीछे दौड़ती; देशान्—सारे देशों को; पुनन्ती—पवित्र बनाती; निर्दग्धान्—जलकर राख हुए; आसिञ्चत्—ऊपर जल छिड़का; सगर-आत्मजान्—सगर के पुत्रों को।

भगीरथ एक तेज रथ पर सवार हुए और गंगा माता के आगे-आगे चले जो अनेक देशों को शुद्ध करती हुई उनके पीछे पीछे चलती हुई उस स्थान पर पहुँचीं जहाँ सगर के पुत्र भगीरथ के पितृगण की

भस्म पड़ी थी। इस पर गंगा का जल छिड़का गया।

यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि ।

सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यत्-जल—जिसका पानी; स्पर्श-मात्रेण—केवल स्पर्श करने से; ब्रह्म-दण्ड-हता:—जो लोग ब्रह्म (आत्म) का अपमान करने के कारण दण्डित हुए; अपि—यद्यपि; सगर-आत्मजा:—सगर के पुत्र; दिवम्—स्वर्गलोक को; जग्मुः—गये; केवलम्—मात्र; देह-भस्मभिः—अपने भस्म हुए शरीरों की बची राख से।

चूँकि सगर महाराज के पुत्रों ने महापुरुष का अपमान किया था अतएव उनके शरीर का ताप बढ़ गया था और वे जलकर भस्म हो गये थे। किन्तु मात्र गंगाजल के छिड़कने से वे सभी स्वर्गलोक जाने के पात्र बन गये। अतएव जो लोग गंगा की पूजा करने के लिए गंगाजल का प्रयोग करते हैं उनके विषय में क्या कहा जाए? है?

तात्पर्य : गंगा मइया की पूजा गंगाजल से की जाती है—भक्त थोड़ा सा गंगाजल लेकर पुनः उस गंगा में चढ़ा देता है। जब भक्त गंगा में से जल लेता है तो गंगा मइया की न तो कुछ हानि होती है और न ही, जब भक्त उस जल को गंगा में डाल देता है, कोई वृद्धि होती है, किन्तु इस प्रकार गंगा के आराधक लाभान्वित होते हैं। इसी प्रकार जब भक्त भगवान् को भक्तिपूर्वक पत्रं पुष्पं फलं तोयम् अर्थात् पत्र, फूल, फल तथा जल चढ़ाता है तो हर वस्तु भगवान् की होने से, न तो कोई त्यागने का प्रश्न उठता है और न स्वीकारने का। मनुष्य को मात्र भक्तियोग का लाभ उठाना चाहिए क्योंकि इसका पालन करने से किसी का कुछ जाता नहीं प्रत्युत परमपुरुष की कृपा प्राप्त होती है।

भस्मीभूताङ्गसङ्गेन स्वर्गाताः सगरात्मजाः ।

किं पुनः श्रद्धया देवीं सेवन्ते ये धृतव्रताः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

भस्मीभूत-अङ्ग—जलकर राख हुए शरीरों से; सङ्गेन—गंगाजल के स्पर्श से; स्वः याताः—स्वर्गलोक चले गये; सगर-आत्मजाः—सगर के पुत्र; किम्—क्या कहा जाय; पुनः—फिर; श्रद्धया—श्रद्धा तथा भक्ति से; देवीम्—माता गंगा की; सेवन्ते—पूजा करते हैं; ये—जो व्यक्ति; धृत-व्रताः—संकल्प लेकर।

भस्म शरीरों की राखों का गंगाजल के साथ सम्पर्क होने से सगर महाराज के पुत्र स्वर्गलोक चले गये। अतएव उन लोगों के विषय में क्या कहा जाय जो संकल्प लेकर श्रद्धापूर्वक गंगा मइया की

पूजा करते हैं? ऐसे भक्तों को मिलने वाले लाभ की मात्र कल्पना की जा सकती है।

न ह्येतत्परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ।

अनन्तचरणाभोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; एतत्—यह; परम्—चरम; आश्चर्यम्—आश्चर्यजनक वस्तु; स्वर्धुन्याः—गंगाजल का; यत्—जो; इह—यहाँ पर; उदितम्—कहा गया है; अनन्त—भगवान् का; चरण-अभोज—चरणकमलों से; प्रसूतायाः—निकलने वाले का; भव-छिदः—भवबन्धन से छुड़ाने में समर्थ।

चूँकि गंगामाता भगवान् अनन्तदेव के चरणकमल के अँगूठे से निकलती हैं, अतएव वे मनुष्य को भवबन्धन से मुक्त करने में सक्षम हैं। इसलिए यहाँ पर उनके विषय में जो कुछ बतलाया जा रहा है वह तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है।

तात्पर्य : यह वास्तव में देखा गया है कि जो व्यक्ति नियमित रूप से गंगास्नान करके गंगाजी की पूजा करता है उसका स्वास्थ्य ठीक रहता है और वह धीरे-धीरे भगवद्भक्त बन जाता है। यह गंगाजल में स्नान करने का प्रभाव है। सारे वैदिक शास्त्रों में गंगा में स्नान करने की संस्तुति की गई है; अतएव जो भी इस पथ को ग्रहण करेगा वह सारे पापफलों से पूर्णतया छूट जायेगा। इसके ज्वलन्त प्रमाण महाराज सगर के भस्मीभूत पुत्र हैं जो गंगाजल के स्पर्शमात्र से स्वर्गलोक को प्राप्त हुए।

सन्निवेश्य मनो यस्मिञ्श्रद्धया मुनयोऽमलाः ।

त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सन्निवेश्य—पूरा ध्यान देकर; मनः—मन; यस्मिन्—जिसमें; श्रद्धया—श्रद्धा तथा भक्ति से; मुनयः—मुनिगण; अमलाः—पापों के कल्मष से मुक्त हुए; त्रैगुण्यम्—प्रकृति के तीनों गुण; दुस्त्यजम्—जिनको छोड़ पाना अत्यन्त कठिन है; हित्वा—फिर भी त्याग करके; सद्यः—शीघ्र; याताः—प्राप्त किया; तत्-आत्मताम्—भगवान् का आध्यात्मिक गुण, भगवत्स्वरूप।

मुनिगण भौतिक कामवासनाओं से सर्वथा मुक्त होकर, अपना ध्यान पूरी तरह भगवान् की सेवा में लगाते हैं। ऐसे व्यक्ति बिना किसी कठिनाई के भवबन्धन से छूट जाते हैं और वे भगवान् का आध्यात्मिक गुण प्राप्त करके दिव्यपद को प्राप्त होते हैं। भगवान् की यही महिमा है।

श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् ।

सिन्धुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १६ ॥

ऋतूपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयात्रलात् ।
दत्त्वाक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

श्रुतः—श्रुत नामक पुत्र; भगीरथात्—भगीरथ से; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; तस्य—श्रुत का; नाभः—नाभ नामक; अपरः—अन्य, पूर्णवर्णित नाम से भिन्न; अभवत्—उत्पन्न हुआ; सिन्धुद्वीपः—सिन्धुद्वीप नाम से; ततः—नाभ से; तस्मात्—सिन्धुद्वीप से; अयुतायुः—अयुतायु नामक पुत्र; ततः—तत्पश्चात्; अभवत्—पैदा हुआ; ऋतूपर्णः—ऋतूपर्ण नामक पुत्र; नल-सखः—नल का मित्र; यः—जो; अश्व-विद्याम्—घोड़ों को वश में करने की कला; अयात्—अर्जित की; नलात्—नल से; दत्त्वा—बदले में देकर; अक्ष-हृदयम्—द्यूतक्रीड़ा का रहस्य; च—तथा; अस्मै—नल को; सर्वकामः—सर्वकाम नामक; तु—निस्सन्देह; तत्-सुतम्—उसका (ऋतूपर्ण) पुत्र ।

भगीरथ का पुत्र श्रुत था और श्रुत का पुत्र नाभ था। (यह नाभ पूर्ववर्णित नाभ से भिन्न है)।

नाभ का पुत्र सिन्धुद्वीप हुआ, जिसका पुत्र अयुतायु था और अयुतायु का पुत्र ऋतूपर्ण हुआ जो नल राजा का मित्र बन गया। ऋतूपर्ण ने नल राजा को द्यूतक्रीड़ा सिखलाई और बदले में उसने नल राजा से घोड़ों को वश में करना तथा उनकी देखरेख करना सीखा। ऋतूपर्ण का पुत्र सर्वकाम था।

तात्पर्य : जुआ खेलना (द्यूत) भी एक कला है। क्षत्रियों को द्यूतक्रीड़ा की कला में अपनी प्रतिभा दिखलाने की छूट है। कृष्ण की कृपा से पाण्डवों ने जुए में अपना सर्वस्व गवाँ दिया और वे अपने राज्य, पत्नी, परिवार तथा घर सबसे वंचित हो गये क्योंकि वे द्यूत कला में पटु न थे। दूसरे शब्दों में, हो सकता है कि भक्त भौतिकतावादी कार्यकलापों में दक्ष न हो सकता हो। अतएव शास्त्रों का उपदेश है कि जीवों के लिए, विशेष रूप से भक्तों के लिए, संसारी कार्यकलाप अनुकूल नहीं होते। अतएव भक्त को भगवान् द्वारा भेजे गये प्रसाद को खाकर ही सन्तुष्ट होना चाहिए। भक्त शुद्ध बना रहता है क्योंकि वह द्यूतक्रीड़ा, नशा, मांसाहार तथा अवैध यौन जैसे पापपूर्ण कृत्य नहीं करता।

ततः सुदासस्तत्पुत्रो दमयन्तीपतिर्नृपः ।
आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषाङ्घ्रिमुत क्वचित् ।
वसिष्ठशापाद्रक्षोऽभूदनपत्यः स्वकर्मणा ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ततः—सर्वकाम से; सुदासः—सुदास उत्पन्न हुआ; तत्-पुत्रः—सुदास का पुत्र; दमयन्ती-पतिः—दमयन्ती का पति; नृपः—राजा बना; आहुः—कहा जाता है; मित्रसहम्—मित्रसह; यम् वै—भी; कल्माषाङ्घ्रिम्—कल्माषपाद से; उत—ज्ञात; क्वचित्—कभी; वसिष्ठ-शापात्—वसिष्ठ के शाप से; रक्षः—मनुष्यभक्षक; अभूत्—बना; अनपत्यः—सन्तानहीन; स्व-कर्मणा—अपने पापपूर्ण कर्म से।

सर्वकाम के एक सुदास नामक पुत्र हुआ जिसका पुत्र सौदास कहलाया जो दमयन्ती का पति था। कभी-कभी सौदास मित्रसह या कल्माषपाद के नाम से जाना जाता है। अपने ही दुष्कर्मों के

कारण मित्रसह निःसन्तान था और उसे वसिष्ठ द्वारा राक्षस बनने का शाप मिला ।

श्रीराजोवाच

किं निमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः ।
एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; किम् निमित्तः—किस कारण से; गुरोः—गुरु का; शापः—शाप; सौदासस्य—सौदास का; महा-आत्मनः—महान् आत्मा का; एतत्—यह; वेदितुम्—जानने के लिए; इच्छामः—इच्छा करता हूँ; कथ्यताम्—कृपया मुझसे कहें; न—नहीं; रहः—गोपनीय; यदि—यदि ।

राजा परीक्षित ने कहा : हे शुकदेव गोस्वामी, सौदास के गुरु वसिष्ठ ने इस महापुरुष को शाप क्यों दिया ? मैं इसे जानना चाहता हूँ । यदि यह गोपनीय विषय न हो तो कृपया कह सुनायें ।

श्रीशुक उवाच

सौदासो मृगयां किञ्चिच्चरत्रक्षो जघान ह ।
मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥ २० ॥
सञ्चिन्तयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे ।
गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सौदासः—राजा सौदास ने; मृगयाम्—शिकार के लिए; किञ्चित्—किसी समय; चरन्—घूमते हुए; रक्षः—राक्षस, मानव भक्षी; जघान—मारा; ह—था; मुमोच—छोड़ दिया; भ्रातरम्—उस राक्षस के भाई को; सः—उसने; अथ—तत्पश्चात्; गतः—गया; प्रतिचिकीर्षया—बदला लेने के लिए; सञ्चिन्तयन्—उसने सोचा; अघम्—कुछ नुकसान करने के लिए; राज्ञः—राजा का; सूद-रूप-धरः—रसोइये का वेश धारण किया; गृहे—घर में; गुरवे—राजा के गुरु को; भोक्तु-कामाय—भोजन करने के लिए आया हुआ; पक्त्वा—भोजन बनाने के बाद; निन्ये—दिया; नर-आमिषम्—मनुष्य का मांस ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : एक बार सौदास जंगल में मृगया के लिए गया जहाँ उसने एक राक्षस को मार डाला, किन्तु राक्षस के भाई को क्षमा करके छोड़ दिया । किन्तु उस भाई ने बदला लेने का निश्चय किया । राजा को क्षति पहुँचाने के विचार से वह राजा के घर में रसोइया बन गया । एक दिन जब राजा के गुरु वसिष्ठ मुनि को भोजन करने के लिए आमंत्रित किया गया तो इस राक्षस रसोइये ने उन्हें मनुष्य का मांस परोस दिया ।

परिवेक्ष्यमाणं भगवान्विलोक्याभक्ष्यमञ्जसा ।
राजानमशपत्क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

परिवेक्ष्यमाणम्—भोज्य पदार्थों का परीक्षण करते हुए; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; विलोक्य—देखकर; अभक्ष्यम्—खाने के लिए अनुपयुक्त; अञ्जसा—अपनी योग शक्ति से सरलतापूर्वक; राजानम्—राजा को; अशपत्—शाप दे दिया; क्रुद्धः—अत्यन्त क्रोधित होकर; रक्षः—मनुष्यभक्षी राक्षस; हि—निस्सन्देह; एवम्—इस प्रकार; भविष्यसि—हो जाओगे।

वसिष्ठ मुनि, परोसे भोजन की परीक्षा करते हुए, अपने योगबल से समझ गये कि यह मनुष्य का मांस है अतएव अभक्ष्य है। फलतः वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने तुरन्त ही सौदास को मनुष्यभक्षी (राक्षस) बनने का शाप दे डाला।

रक्षःकृतं तद्विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् ।
सोऽप्यपोऽञ्जलिमादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ २३ ॥
वारितो मदयन्त्यापो रुशतीः पादयोर्जहौ ।
दिशः खमवनीं सर्वं पश्यञ्जीवमयं नृपः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

रक्षः-कृतम्—राक्षस द्वारा ही किया हुआ; तत्—वह मांस का परोसा जाना; विदित्वा—जानकर; चक्रे—वसिष्ठ ने सम्पन्न किया; द्वादश-वार्षिकम्—प्रायश्चित्त के लिए बारह वर्ष की तपस्या; सः—वह सौदास; अपि—भी; अपः-अञ्जलिम्—अंजुली भर पानी; आदाय—लाकर; गुरुम्—अपने गुरु वसिष्ठ को; शप्तुम्—शाप देने के लिए; समुद्यतः—तैयार; वारितः—मना किये जाने पर; मदयन्त्या—अपनी पत्नी मदयन्ती द्वारा; अपः—जल; रुशतीः—मंत्रोच्चार से सशक्त; पादयोः जहौ—अपने पाँवों पर फेंका; दिशः—सारी दिशाएँ; खम्—आकाश में; अवनीम्—पृथ्वी पर; सर्वम्—सर्वत्र; पश्यन्—देखते हुए; जीव-मयम्—जीवों से पूर्ण; नृपः—राजा ने।

जब वसिष्ठ समझ गये कि यह मांस राजा द्वारा नहीं, अपितु राक्षस द्वारा ही परोसा गया है तो उन्होंने निर्दोष राजा को शाप देने के प्रायश्चित्त स्वरूप अपने को शुद्ध करने के लिए बारह वर्ष तक तपस्या की। तब राजा सौदास ने अंजुली में पानी लेकर वसिष्ठ को शाप देने के लिए शापमंत्र का उच्चारण करना चाहा, किन्तु उसकी पत्नी मदयन्ती ने उसे ऐसा करने से रोका। तब राजा ने देखा कि दसों दिशाओं, आकाश तथा पृथ्वी पर सर्वत्र जीव ही जीव थे।

राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः ।
व्यवायकाले ददृशे वनौकोदम्पती द्विजौ ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

राक्षसम्—मनुष्यभक्षक; भावम्—प्रवृत्ति; आपन्नः—प्राप्त करके; पादे—पाँव पर; कल्माषताम्—काला धब्बा; गतः—प्राप्त किया; व्यवाय-काले—मैथुन के समय; ददृशे—देखा; वन-ओकः—वनवासी; दम्-पती—पति-पत्नी; द्विजौ—ब्राह्मण।

इस तरह सौदास ने मानवभक्षी प्रवृत्ति अर्जित कर ली और उसके पाँव में एक काला धब्बा हो गया जिससे वह कल्माषपाद कहलाया। एक बार कल्माषपाद ने एक ब्राह्मण दम्पति को जंगल में संभोगरत देखा।

क्षुधार्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्याहाकृतार्थवत् ।
 न भवान्राक्षसः साक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ २६ ॥
 मदयन्त्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि ।
 देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

क्षुधा-आर्तः—भूख से पीड़ित; जगृहे—पकड़ लिया; विप्रम्—ब्राह्मण को; तत्-पत्नी—उसकी पत्नी ने; आह—कहा; अकृत-अर्थ-वत्—असंतुष्ट गरीब तथा भूखा; न—नहीं; भवान्—आप; राक्षसः—राक्षस; साक्षात्—प्रत्यक्ष; इक्ष्वाकूणाम्—महाराज इक्ष्वाकु के वंशजों में; महा-रथः—महान् योद्धा; मदयन्त्याः—मदयन्ती का; पतिः—पति; वीर—हे वीर; न—नहीं; अधर्मम्—अधर्म; कर्तुम्—करने के लिए; अर्हसि—तुम योग्य हो; देहि—उद्धार करिये; मे—मेरा; अपत्य-कामायाः—पुत्र प्राप्ति की इच्छा से; अकृत-अर्थम्—जिसकी इच्छा पूरी न हो; पतिम्—पति को; द्विजम्—ब्राह्मण ।

राक्षस-वृत्ति से प्रभावित होने तथा अत्यन्त भूखा रहने के कारण राजा सौदास ने ब्राह्मण को पकड़ लिया। तब ब्राह्मण की बेचारी पत्नी ने राजा से कहा : हे वीर, तुम असली राक्षस नहीं हो, प्रत्युत तुम महाराज इक्ष्वाकु के वंशज हो। निस्सन्देह, तुम महान् योद्धा और मदयन्ती के पति हो। तुम्हें इस तरह पाप-कर्म नहीं करना चाहिए। मुझे पुत्र प्राप्त करने की इच्छा है अतएव मेरे पति को छोड़ दो, अभी उसने मुझे गर्भित नहीं किया है।

देहोऽयं मानुषो राजन्पुरुषस्याखिलार्थदः ।
 तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

देहः—शरीर; अयम्—यह; मानुषः—मनुष्य का; राजन्—हे राजा; पुरुषस्य—जीव का; अखिल—समष्टि; अर्थ-दः—लाभकारी; तस्मात्—इसलिए; अस्य—मेरे पति के शरीर की; वधः—हत्या; वीर—हे वीर; सर्व-अर्थ-वधः—सारे लाभप्रद अवसरों की हत्या; उच्यते—कहा जाता है।

हे राजा, हे वीर, यह मानव शरीर सबों के लाभ के निमित्त है। यदि तुम इस शरीर का असमय वध कर दोगे तो तुम मानव जीवन के सारे लाभों की हत्या कर डालोगे।

तात्पर्य : श्रील नरोत्तम दास ठाकुर का गीत है—

हरि हरि विफले जनम गोंआइनु

मनुष्य-जनम पाइया, राधा-कृष्ण ना भजिया

जानिया शुनिया विष खाइनु

मनुष्य का शरीर अत्यन्त मूल्यवान है क्योंकि इसी शरीर से कृष्ण के उपदेशों को समझा जा सकता है

और चरमगति प्राप्त की जा सकती है। जीव इस भौतिक संसार में भगवद्धाम वापस जाने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए आया है। भौतिक जगत में सुख की लालसा की जाती है लेकिन चरमलक्ष्य न जानने के कारण मनुष्य को एक शरीर त्यागकर दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है। यदि किसी को मनुष्य का शरीर धारण करने का अवसर मिले तो वह इसी शरीर में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चार सिद्धान्तों की पूर्ति कर सकता है और यदि वह नियमित रूप से रहता रहे तो मोक्ष से भी आगे बढ़कर राधा-कृष्ण की सेवा में लग सकता है। यही जीवन की सफलता है कि जन्म-मरण के चक्र को समाप्त कर के भगवद्धाम जाया जाय (*मामेति*) और राधा-कृष्ण की सेवा की जाए। अतएव यह मनुष्य शरीर जीवन की प्रगति को पूरा करने के लिए मिला है। पूरे मानव समाज में मनुष्य-वध को गंभीरता से लिया जाता है। यद्यपि कसाईघर में हजारों-लाखों पशुओं का वध किया जाता है और कोई तनिक भी परवाह नहीं करता, किन्तु एक भी मनुष्य का वध गम्भीरता से लिया जाता है। क्यों? क्योंकि मानव-जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्य-जीवन ही अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

एष हि ब्राह्मणो विद्वान्स्तपःशीलगुणान्वितः ।

आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम् ।

सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वन्तर्हितं गुणैः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह; हि—निस्सन्देह; ब्राह्मणः—योग्य ब्राह्मण; विद्वान्—वैदिक ज्ञान में पारंगत; तपः—तपस्या; शील—सदाचरण; गुण-
अन्वितः—सारे सदगुणों से युक्त; आरिराधयिषुः—पूजा में लगने की इच्छा करता हुआ; ब्रह्म—परब्रह्म; महा-पुरुष—महापुरुष कृष्ण;
संज्ञितम्—के नाम से विख्यात; सर्व-भूत—सारे जीवों का; आत्म-भावेन—परमात्मा रूप; भूतेषु—हर जीव में; अन्तर्हितम्—हृदय के
भीतर; गुणैः—गुणों के द्वारा।

यह ब्राह्मण विद्वान् अत्यन्त योग्य, तपस्या में रत तथा समस्त जीवों के हृदय में वास करने वाले परमात्मा परब्रह्म की पूजा करने के लिए परम उत्सुक है।

तात्पर्य : ब्राह्मण की पत्नी अपने पति को ऐसा दिखावटी ब्राह्मण नहीं मानती थी जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण कहलाता हो। प्रत्युत यह ब्राह्मण ब्राह्मण-लक्षणों से युक्त होने से सचमुच योग्य था। *यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तम्* (*भागवत* ७.११.३५)। ब्राह्मण के लक्षणों का उल्लेख शास्त्र में इस प्रकार हुआ है—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

“शान्ति, आत्मसंयम, तपस्या, शुद्धि, सहिष्णुता, निष्कपटता, ज्ञान, विज्ञान तथा धार्मिकता—ये गुण हैं जिनके द्वारा ब्राह्मण कर्म करता है।” (भगवद्गीता १८.४२) ब्राह्मण को न केवल सुयोग्य होना चाहिए अपितु उसे वास्तविक ब्राह्मण-कर्म करने चाहिए। योग्यता ही पर्याप्त नहीं होगी, मनुष्य को ब्राह्मण के कर्तव्य भी करने चाहिए। ब्राह्मण का कर्तव्य है कि वह परब्रह्म कृष्ण को जाने (परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्)। चूँकि यह ब्राह्मण वास्तव में योग्य था और ब्रह्मकर्म में लगा था अतएव इसका वध करना अत्यन्त पापपूर्ण कृत्य होगा। ब्राह्मण की पत्नी ने अनुनय-विनय की कि उसके पति का वध न किया जाय।

सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद्विभो ।

कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

सः—वह ब्राह्मण; अयम्—यह; ब्रह्म-ऋषि-वर्यः—न केवल ब्राह्मण अपितु ऋषियों में श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि; ते—तथा तुमसे; राज-ऋषि-प्रवरात्—जो सारे राजर्षियों में सर्वश्रेष्ठ है; विभो—हे राज्य के स्वामी; कथम्—कैसे; अर्हति—योग्य है; धर्म-ज्ञ—हे धर्म के ज्ञाता; वधम्—वध; पितुः—पिता द्वारा; इव—सदृश; आत्मजः—पुत्र।

हे प्रभु, तुम धार्मिक सिद्धान्तों से पूर्णतया अवगत हो। जिस तरह पुत्र कभी भी अपने पिता द्वारा वध्य नहीं है, उसी तरह इस ब्राह्मण की राजा द्वारा रक्षा होनी चाहिए न कि वध। तुम जैसे राजर्षि द्वारा इसका वध किस तरह उचित है?

तात्पर्य : राजर्षि शब्द ऐसे राजा का सूचक है जो ऋषि तुल्य आचरण करता है। ऐसा राजा नरदेव भी कहलाता है क्योंकि वह परमेश्वर का प्रतिनिधि माना जाता है। चूँकि राजा का कर्तव्य ब्राह्मण संस्कृति की रक्षा के लिए शासन करना है अतएव वह कभी भी ब्राह्मण का वध नहीं करना चाहता। सामान्यतया ब्राह्मण, स्त्री, शिशु, वृद्ध या गाय को दण्डनीय नहीं माना जाता। अतएव ब्राह्मण पत्नी ने राजा से प्रार्थना की कि वह इस पापकृत्य से बचे।

तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः ।

कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते सन्मतो भवान् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; साधोः—साधुपुरुष का; अपापस्य—निष्पापी; भ्रूणस्य—भ्रूण का; ब्रह्म-वादिनः—वैदिक ज्ञान में पारंगत; कथम्—कैसे; वधम्—वध; यथा—जिस तरह; बभ्रोः—गाय का; मन्यते—तुम सोचते हो; सत्-मतः—मान्य; भवान्—आप।

तुम विख्यात हो और विद्वानों में पूजित हो। तुम किस तरह इस ब्राह्मण का वध करने का साहस कर रहे हो जो साधु, निष्पाप तथा वैदिक ज्ञान में पटु है? उसका वध करना गर्भ के भीतर भ्रूण नष्ट करने या गोवध के तुल्य होगा।

तात्पर्य : जैसा कि अमरकोश में कहा गया है— भ्रूणोऽर्भके बालगर्भे—भ्रूण या तो गाय के लिए आता है या गर्भस्थ शिशु के लिए। वैदिक संस्कृति के अनुसार गर्भ में जीव के अविकसित भ्रूण को विनष्ट करना गाय या ब्राह्मण के वध के समान पापमय है। भ्रूण में जीव अविकसित अवस्था में रहता है। यह आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त कि जीवन रसायनों का संयोग है, निरर्थक है। विज्ञानीजन जीवों की रचना नहीं कर सकते, यहाँ तक कि अंडे से निकलने वाले जीव की भी। विज्ञानियों का यह विचार कि वे ऐसी रासायनिक परिस्थिति उत्पन्न कर सकते हैं जो अंडे के समान हो और फिर उसमें जीवन पैदा हो जाय, निरर्थक है। उनका यह सिद्धान्त कि रासायनिक संयोग में जीवन हो सकता है, इसे तो स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु ये धूर्त ऐसा संयोग ला नहीं सकते। इस श्लोक में भ्रूणस्य वधम् आया है जिसका अर्थ है भ्रूण-हत्या। यह वैदिक साहित्य से आई हुई चुनौती है। यह समझना कि जीव पदार्थ का संयोग है अत्यन्त भोंडा तथा नास्तिकतापूर्ण है और नितान्त अज्ञान का सूचक है।

यद्ययं क्रियते भक्ष्यस्तरि मां खाद पूर्वतः ।

न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; अयम्—यह ब्राह्मण; क्रियते—स्वीकार किया जाता है; भक्ष्यः—खाद्य; तरि—तब तो; माम्—मुझको; खाद—खा लो; पूर्वतः—उसके पूर्व; न—नहीं; जीविष्ये—मैं जीवित रहूँगी; विना—बिना; येन—जिसके (पति); क्षणम् च—एक पल भी; मृतकम्—शव; यथा—सदृश।

मैं अपने पति के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। यदि तुम मेरे पति को खा जाना चाहते हो, तो अच्छा होगा कि पहले तुम मुझे खा लो क्योंकि मैं अपने पति के बिना मृतक तुल्य हूँ।

तात्पर्य : वैदिक संस्कृति में सती या सहमरण प्रथा है जिसमें स्त्री अपने पति के साथ मरती है। इस प्रथा के अनुसार यदि पति मर जाता है तो पत्नी जलती चिता में स्वेच्छा से कूद कर अपने पति के साथ जल जाती है। इस श्लोक में ब्राह्मण पत्नी द्वारा इस संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है। पतिविहीन स्त्री शव तुल्य है। अतएव वैदिक संस्कृति के अनुसार कन्या का विवाह होना आवश्यक है। यह उसके पिता का उत्तरदायित्व

है। भले ही कन्या को दान कर दिया जाय अथवा पति के एक से अधिक पत्नियाँ हों, किन्तु कन्या का विवाह होना ही चाहिए। यही वैदिक संस्कृति है। स्त्री को सदैव पराश्रित माना जाता है—बचपन में वह अपने पिता पर, युवावस्था में अपने पति पर और वृद्धावस्था में अपने सयाने पुत्रों पर आश्रित रहती है। *मनुसंहिता* के अनुसार वह कभी स्वतंत्र नहीं होती। स्त्री-स्वाधीनता का अर्थ हैकष्टमय जीवन। इस युग में कितनी ही लड़कियाँ अविवाहित हैं और वे झूठे ही अपने को स्वतंत्र समझती हैं, किन्तु उनका जीवन कष्टमय है। यहाँ एक ऐसा दृष्टान्त है जिसमें एक स्त्री यह अनुभव करती है कि अपने पति के बिना वह शवमात्र है।

एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत् ।

व्याघ्रः पशुमिवाखादत्सौदासः शापमोहितः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; करुण-भाषिण्या:—करुणभाव से बोलती वह ब्राह्मण की पत्नी; विलपन्त्या:—घोर विलाप करती; अनाथ-वत्—उस स्त्री के समान जिसका कोई रक्षक न हो; व्याघ्रः—बाघ; पशुम्—पशु; इव—सदृश; अखादत्—खा लिया; सौदासः—राजा सौदास ने; शाप—शाप से; मोहितः—शापित होने से।

वसिष्ठ के शापवश राजा सौदास उस ब्राह्मण को निगल गया, जिस तरह कोई बाघ अपने शिकार को निगल जाता है। यद्यपि ब्राह्मणपत्नी ने अत्यन्त कातरभाव से विनय की, किन्तु उसके विलाप से भी सौदास नहीं पसीजा।

तात्पर्य : यह भाग्य का उदाहरण है। राजा सौदास को वसिष्ठ ने शाप दे दिया था अतएव योग्य होते हुए भी वह व्याघ्र-सदृश राक्षस बनने से अपने को रोक नहीं पाया क्योंकि यही उसके भाग्य में बदा था। *तल्लभ्यते दुःखवद् अन्यतः सुखम् (भागवत १.५.१८)*। जिस तरह भाग्य के द्वारा मनुष्य संकट में फँसता है उसी तरह भाग्य से वह सुख भी प्राप्त कर सकता है। भाग्य (भावी) अत्यन्त प्रबल है, किन्तु यदि कृष्णभावनामृत को प्राप्त कर लिया जाय तो भाग्य को बदला जा सकता है। *कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजाम् (ब्रह्म-संहिता ५.५४)*।

ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम् ।

शोचन्त्यात्मानमुर्वीशमशपत्कुपिता सती ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

ब्राह्मणी—ब्राह्मण पत्नी; वीक्ष्य—देखकर; दिधिषुम्—गर्भाधान के लिए उद्यत पति को; पुरुष-अदेन—मनुष्यभक्षक (राक्षस) द्वारा; भक्षितम्—खाया जाकर; शोचन्ती—अत्यधिक विलाप करती; आत्मानम्—अपने लिए; उर्वीशम्—राजा को; अशपत्—शाप दे दिया; कुपिता—वृद्धा; सती—सती ने।

जब ब्राह्मण की सती पत्नी ने देखा कि उसका पति, जो गर्भाधान के लिए उद्यत ही था, उस मनुष्यभक्षक द्वारा खा लिया गया तो वह शोक तथा विलाप से अत्यधिक सन्तप्त हो उठी। इस तरह उसने क्रोध में आकर राजा को शाप दे दिया।

यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया ।

तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

यस्मात्—चूँकि; मे—मेरा; भक्षितः—खाया गया; पाप—हे पापी; काम-आर्तायाः—कामेच्छा से विरहित स्त्री का; पतिः—पति; त्वया—तुम्हारे द्वारा; तव—तुम्हारी; अपि—भी; मृत्युः—मृत्यु; आधानात्—गर्भाधान करते समय; अकृत-प्रज्ञ—अरे मूर्ख धूर्त; दर्शितः—तुमको शाप दिया जाता है।

अरे मूर्ख पापी, चूँकि तूने मेरे पति को तब निगला जब मैं कामेच्छा से पीड़ित और गर्भाधान के लिए लालायित थी अतएव मैं तुझे भी तभी मरते देखना चाहती हूँ जब तू अपनी पत्नी में गर्भाधान करने को उद्यत हो। दूसरे शब्दों में, जब भी तू अपनी पत्नी से संभोग करना चाहेगा तू मर जाएगा।

एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा ।

तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मित्रसहम्—राजा सौदास को; शप्त्वा—शाप देकर; पति-लोक-परायणा—अपने पति के साथ जाने को उद्यत; तत्-अस्थीनि—अपने पति की हड्डियों को; समिद्धे अग्नौ—जलती अग्नि में; प्रास्य—रखकर; भर्तुः—अपने पति के; गतिम्—गन्तव्य को; गता—वह भी चली गई।

इस प्रकार ब्राह्मणपत्नी ने राजा सौदास को, जो मित्रसह के नाम से विख्यात है, शाप दे डाला। तत्पश्चात् अपने पति के साथ जाने के लिए सन्नद्ध उसने पति की अस्थियों में आग लगा दी, स्वयं वह उसमें कूद पड़ी और पति के साथ-साथ उसी गन्तव्य को प्राप्त हुई।

विशापो द्वादशाब्दान्ते मैथुनाय समुद्यतः ।

विज्ञाप्य ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

विशापः—शाप से छूटा; द्वादश-अब्द-अन्ते—बारह वर्ष बाद; मैथुनाय—अपनी पत्नी के साथ मैथुन करने के लिए; समुद्यतः—जब सौदास तैयार था; विज्ञाप्य—याद दिलाते हुए; ब्राह्मणी-शापम्—ब्राह्मणी द्वारा दिया गया शाप; महिष्या—रानी द्वारा; सः—वह (राजा); निवारितः—रोक लिया गया।

बारह वर्ष बाद जब राजा सौदास वसिष्ठ द्वारा दिये गये शाप से मुक्त हुआ तो उसने अपनी पत्नी के साथ सम्भोग करना चाहा। किन्तु रानी ने उसे ब्राह्मणी द्वारा दिये गये शाप का स्मरण कराया। इस तरह उसे सम्भोग करने से रोक दिया।

अत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाप्रजाः ।
वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

अतः—इस प्रकार से; ऊर्ध्वम्—निकट भविष्य में; सः—उस राजा ने; तत्याज—छोड़ दिया; स्त्री-सुखम्—मैथुन-सुख; कर्मणा—भाग्य द्वारा; अप्रजाः—निस्सन्तान रहता रहा; वसिष्ठः—ऋषि वसिष्ठ ने; तत्-अनुज्ञातः—राजा की अनुमति से पुत्र उत्पन्न करने के लिए; मदयन्त्याम्—राजा सौदास की पत्नी मदयन्ती के गर्भ में; प्रजाम्—शिशु; अधात्—उत्पन्न किया।

इस प्रकार आदिष्ट होने पर राजा ने भावी संभोग-सुख त्याग दिया और भाग्यवश निस्सन्तान रहता रहा। बाद में राजा की अनुमति से ऋषि वसिष्ठ ने मदयन्ती के गर्भ से एक शिशु उत्पन्न किया।

सा वै सप्त समा गर्भमबिभ्रन्न व्यजायत ।
जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सा—वह रानी मदयन्ती; वै—निस्सन्देह; सप्त—सात; समाः—वर्ष; गर्भम्—गर्भ को; अबिभ्रत्—धारण किये रही; न—नहीं; व्यजायत—जन्म दिया; जघ्ने—प्रहार किया; अश्मना—पत्थर से; उदरम्—उदर पर; तस्याः—उसके; सः—पुत्र; अश्मकः—अश्मक; तेन—इसके कारण; कथ्यते—कहलाया।

मदयन्ती सात वर्षों तक बालक को गर्भ में धारण किये रही और उसने बच्चे को जन्म नहीं दिया। अतएव वसिष्ठ ने एक पत्थर से उसके पेट पर प्रहार किया जिससे बालक उत्पन्न हुआ। फलस्वरूप बच्चे का नाम अश्मक (पत्थर से उत्पन्न) पड़ा।

अश्मकाद्बालिको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः ।
नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अश्मकात्—अश्मक से; बालिकः—बालिक नामक पुत्र; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; यः—जो; स्त्रीभिः—स्त्रियों द्वारा; परिरक्षितः—रक्षा किया गया; नारी-कवचः—स्त्रियों की ढाल पहने; इति उक्तः—इस तरह से विख्यात; निःक्षत्रे—क्षत्रियविहीन होने पर (क्योंकि परशुराम ने क्षत्रियों को मार डाला था); मूलकः—क्षत्रियों का जनक, मूलक; अभवत्—बन गया।

अशमक से बालिक उत्पन्न हुआ। चूँकि स्त्रियों से घिरा रहने के कारण बालिक परशुराम के क्रोध से बच गया था अतएव वह नारीकवच कहलाया। जब परशुराम ने सारे क्षत्रियों का विनाश कर दिया तो बालिक अन्य क्षत्रियों का जनक बना। इसीलिए वह मूलक अर्थात् क्षत्रिय वंश का मूल कहलाया।

ततो दशरथस्तस्मात्पुत्र ऐडविडिस्ततः ।

राजा विश्वसहो यस्य खट्वाङ्गश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

ततः—बालिक से; दशरथः—दशरथ; तस्मात्—उससे; पुत्रः—पुत्र; ऐडविडिः—ऐडविडि; ततः—उससे; राजा विश्वसहः—सुप्रसिद्ध राजा विश्वसह उत्पन्न हुआ; यस्य—जिसके; खट्वाङ्गः—खट्वांग नामक राजा; चक्रवर्ती—सम्राट; अभूत्—बना।

बालिक का पुत्र दशरथ हुआ, दशरथ का पुत्र ऐडविडि तथा ऐडविडि का पुत्र राजा विश्वसह हुआ। विश्वसह का पुत्र सुप्रसिद्ध महाराज खट्वांग था।

यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद्युधि दुर्जयः ।

मुहूर्तमायुर्जात्वैत्य स्वपुरं सन्दधे मनः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यः—राजा खट्वांग ने; देवैः—देवताओं द्वारा; अर्थितः—प्रार्थना किए जाने पर; दैत्यान्—असुरों को; अवधीत्—मार डाला; युधि—युद्ध में; दुर्जयः—अत्यन्त भीषण; मुहूर्तम्—एक पल के लिए; आयुः—उम्र; ज्ञात्वा—जानकर; एत्य—पहुँचा; स्व-पुरम्—अपने घर में; सन्दधे—स्थिर कर लिया; मनः—मन को।

राजा खट्वांग किसी भी युद्ध में दुर्जेय था। असुरों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर उसने विजय प्राप्त की और एक ही मनुष्य जन्म में देवताओं ने प्रसन्न होकर उसे वर देना चाहा। जब राजा ने उनसे अपनी आयु के विषय में पूछा तो उसे बतलाया गया कि केवल एक मुहूर्त शेष है। अतएव उसने तुरन्त अपने घर जाकर भगवान् के चरणकमलों में अपना मन लगाया।

तात्पर्य : महाराज खट्वांग द्वारा भक्ति में लगने का उदाहरण अत्यन्त ज्वलन्त है। यद्यपि उन्होंने एक पल ही भगवान् की भक्ति की, किन्तु उन्हें भगवद्धाम प्राप्त हुआ। अतएव यदि कोई अपने जीवन के प्रारम्भ से ही भक्ति करे तो वह निश्चित रूप से (असंशयम्) भगवद्धाम जायेगा।

भगवद्गीता (७.१) में असंशय शब्द भक्त के प्रसंग में प्रयुक्त हुआ है। भगवान् आदेश देते हैं—

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन् मदाश्रयः ।

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

“हे पृथापुत्र (अर्जुन)! अब सुनो कि किस तरह मेरी भावना से भावित होकर योगाभ्यास द्वारा मुझमें मन को रमाकर तुम संशय से मुक्त होकर मुझे पूरी तरह जान सकते हो।”

भगवान् यह भी उपदेश देते हैं(भगवद्गीता ४.९) —

जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

“जो मेरे आविर्भाव एवं कार्यों की दिव्य प्रकृति को जानता है वह शरीर छोड़ने पर इस जगत में पुनः जन्म नहीं लेता अपितु, हे अर्जुन! वह मेरे नित्य धाम को प्राप्त होता है।”

अतएव मनुष्य को चाहिए कि जीवन के प्रारम्भ से ही भक्तियोग का अभ्यास करे जिससे कृष्ण के प्रति अनुराग बढ़े। यदि कोई नित्य मन्दिर जाकर अर्चाविग्रह का दर्शन करे, पूजा करके भेंट चढाए, भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करे और यथासम्भव भगवान् की महिमा का प्रचार करे तो वह कृष्ण से अनुरक्त हो जाता है। यह आसक्ति कहलाती है। जब मनुष्य का मन कृष्ण में आसक्त होता है (मय्यासक्तमनाः) तो वह जीवन के उद्देश्य को एक ही मनुष्य जन्म में पूरा कर सकता है। यदि वह इस अवसर को हाथ से जाने देता है तो उसे पता नहीं रहता कि वह कहाँ जा रहा है, जन्म-मरण के चक्र में वह कब तक बँधा रहेगा, पुनः कब मनुष्य जीवन मिलेगा, और उसे कब भगवद्भाम जाने का अवसर प्राप्त होगा। अतएव बुद्धिमान व्यक्ति अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग भगवान् की भक्ति करने में करता है।

न मे ब्रह्मकुलात्प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजाः ।

न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; मे—मेरा; ब्रह्म-कुलात्—ब्राह्मण वृन्द की अपेक्षा; प्राणाः—प्राण; कुल-दैवात्—मेरे कुल द्वारा पूज्य पुरुषों की अपेक्षा; न—नहीं; च—भी; आत्मजाः—पुत्र तथा पुत्रियाँ; न—न तो; श्रियः—ऐश्वर्य; न—न तो; मही—पृथ्वी; राज्यम्—राज्य; न—न तो; दाराः—पत्नी; च—भी; अति-वल्लभाः—अत्यन्त प्रिय।

महाराज खट्वांग ने सोचा: ब्राह्मण संस्कृति तथा मेरे कुलपूज्य ब्राह्मणों की अपेक्षा मेरा जीवन भी मुझे अधिक प्रिय नहीं है। तो फिर मेरे राज्य, भूमि, पत्नी, सन्तान तथा ऐश्वर्य के विषय में क्या कहा जा सकता है? मुझे ब्राह्मणों से अधिक प्रिय कुछ भी नहीं है।

तात्पर्य : महाराज खट्वांग ब्राह्मण-संस्कृति के पक्षपाती थे अतएव वे एक मुहूर्त के शेष समय को भी भगवान् की पूर्ण शरणागति में लगाना चाह रहे थे। भगवान् की पूजा इस स्तुति से की जाती है—

नमो ब्राह्मण्यदेवाय गो ब्राह्मणहिताय च ।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

“मैं परम सत्य कृष्ण को सादर नमस्कार करता हूँ जो ब्राह्मणों, गायों तथा सारे जीवों के शुभचिन्तक हैं। मैं उन गोविन्द को बार-बार नमस्कार करता हूँ जो समस्त इन्द्रियों के आनन्द के आगार हैं।” कृष्णभक्त ब्राह्मण-संस्कृति के प्रति अत्यधिक आसक्त रहता है। निस्सन्देह, ऐसा दक्ष व्यक्ति, जो यह जानता है कि कृष्ण कौन हैं और वे क्या चाहते हैं, ही असली ब्राह्मण है। *ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः।* कृष्ण परब्रह्म हैं अतएव सारे कृष्ण-भक्त पूज्य ब्राह्मण हैं। खट्वांग महाराज कृष्ण-भक्तों को असली ब्राह्मण तथा मानव समाज के असली प्रकाश के रूप में मानते थे। जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत तथा आध्यात्मिक ज्ञान में प्रगति करने का इच्छुक हो उसे ब्राह्मण संस्कृति को सर्वाधिक महत्त्व देना होगा और कृष्ण को समझना होगा (*कृष्णाय गोविन्दाय*)। तभी उसका जीवन सफल होगा।

न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् ।

नापश्यमुत्तमश्लोकादन्यत्किञ्चन वस्त्वहम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; बाल्ये—बचपन में; अपि—निस्सन्देह; मतिः—आकर्षण; मह्यम्—मुझको; अधर्मे—अधर्म में; रमते—भोगता है; क्वचित्—कभी भी; न—न तो; अपश्यम्—देखा; उत्तमश्लोकात्—भगवान् की अपेक्षा; अन्यत्—कोई अन्य वस्तु; किञ्चन—कोई; वस्तु—वस्तु; अहम्—मैंने।

अपने बचपन में भी मैं नगण्य वस्तुओं या अधार्मिक सिद्धान्तों के प्रति कभी आकृष्ट नहीं हुआ।

मुझे भगवान् से बढ़कर तथ्यपूर्ण अन्य कोई वस्तु नहीं मिल पाई।

तात्पर्य : महाराज खट्वांग कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के विशिष्ट उदाहरण प्रतीत होते हैं। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति भगवान् की तुलना में न तो अन्य किसी वस्तु को महत्त्व देता है न ही इस संसार की किसी भी वस्तु को भगवान् से असम्बद्ध मानता है। जैसा कि *चैतन्य-चरितामृत* (मध्य ८.२७४) में कहा गया है—

स्थावरजंगम देखे, ना देखे तार मूर्ति

सर्वत्र हय निज इष्टदेवस्फूर्ति

“महाभागवत निश्चय ही, जड़ तथा चेतन सभी वस्तुएँ देखता है, किन्तु वह उनके स्वरूपों को ठीक रूप में नहीं देखता अपितु सर्वत्र भगवान् के स्वरूप का व्यापक दर्शन करता है।” भक्त इस जगत में रहकर भी इससे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। *निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे*। वह इस जगत को भगवान् से सम्बन्धित देखता है। भक्त धनार्जन में लगा रहने पर भी उस धन का उपयोग बड़े-बड़े मन्दिर बनाकर भगवान् का विग्रह स्थापित करके कृष्णभावनामृत आंदोलन को प्रसारित करने में करता है। अतएव खट्वांग महाराज भौतिकतावादी न थे। भौतिकतावादी अपनी पत्नी, सन्तान, घर, सम्पत्ति तथा इन्द्रियतृप्ति की अन्य वस्तुओं में सदैव लिप्त रहता है, किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है, खट्वांग महाराज ऐसी वस्तुओं में आसक्त न थे, न ही वे भगवान् के कार्य के बिना किसी वस्तु के अस्तित्व के बारे में सोचते थे। *ईशावास्यमुद्दं सर्वम्*—हर वस्तु ईश्वर से सम्बन्धित है। निस्सन्देह, यह चेतना सामान्य व्यक्ति के लिए नहीं होती, किन्तु यदि वह भक्ति करता है जैसा कि *भक्तिरसामृतसिंधु* में निर्धारित है तो उसे इस चेतना में प्रशिक्षित किया जा सकता है और तब उसे पूर्ण ज्ञान मिल सकता है। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के लिए कृष्ण से असंबन्धित कुछ भी नहीं सुहाता।

देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः ।

न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

देवैः—देवताओं के द्वारा; काम-वरः—इच्छित वर; दत्तः—दिया; मह्यम्—मुझको; त्रि-भुवन-ईश्वरैः—तीनों जगतों के रक्षक, देवताओं द्वारा (जो इस लोक में चाहें तो कुछ भी कर सकते हैं); न वृणे—स्वीकार नहीं किया; तम्—उस; अहम्—मैंने; कामम्—इस जगत के भीतर की प्रत्येक इच्छित वस्तु को; भूतभावन-भावनः—भगवान् में पूर्णतया निमग्न हुआ (अतएव किसी भी पदार्थ में रुचि न रखने वाला)।

तीनों लोकों के निदेशक देवतागण मुझे इच्छित वर देना चाहते थे, किन्तु मुझे उनके वर नहीं चाहिए थे क्योंकि मेरी रुचि भगवान् में है जिन्होंने इस संसार की सारी वस्तुओं को बनाया है। मेरी रुचि भौतिक वरों की अपेक्षा भगवान् में कहीं अधिक है।

तात्पर्य : भक्त सदैव दिव्य पद पर स्थित रहता है। *परं दृष्ट्वा निवर्तते*—जिसे भगवान् का दर्शन प्राप्त हो जाता है उसे भौतिक इन्द्रियभोग में कोई रुचि नहीं रह जाती। ध्रुव महाराज जैसे पूज्य भक्त भी भौतिक लाभ

के लिए जंगल गये थे, किन्तु जब उन्होंने भगवान् का दर्शन किया तो कोई भी वर लेना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—*स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे*—हे भगवान्! आपने जो दिया है या नहीं दिया उतने से ही मैं पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। मुझे आपसे कुछ भी नहीं माँगना है क्योंकि मैं आपकी सेवा में लगा रहकर पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। शुद्ध भक्त की मानसिकता यही है। वह भगवान् से कुछ भी नहीं चाहता, न भौतिक न आध्यात्मिक। इसीलिए हमारा आन्दोलन कृष्णभावनामृत संघ कहलाता है—यह ऐसे व्यक्तियों का संगठन है जो केवल कृष्ण के विचारों में खोये रहते हैं। कृष्ण के विचारों में खोये रहना न तो खर्चीला है न कष्टदायक है। कृष्ण कहते हैं—*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु*—अपने मन को मेरे विषय में सोचने, मुझे नमस्कार करने और मेरी पूजा करने में लगाओ (*भगवद्गीता* ९.३४)। कोई भी व्यक्ति बिना कठिनाई या अवरोध के कृष्ण का सदैव चिन्तन कर सकता है। यही कृष्णभावनामृत कहलाता है। जो कृष्णभावनामृत में लगा रहता है उसे कृष्ण से किसी भौतिक लाभ की कामना नहीं रहती। बल्कि ऐसा व्यक्ति भगवान् से यह प्रार्थना करता है कि वह सारे विश्व में भगवान् की महिमाओं का प्रसार करने में समर्थ हो। *मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहेतुकी त्वयि।* कृष्णभावनाभावित व्यक्ति जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होने की भी कामना नहीं करता। वह तो बस यही प्रार्थना करता है, “आप जैसा भी चाहें, मैं वैसा जन्म लूँ, किन्तु मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि मैं आपकी सेवा में लगा रहूँ।”

ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ।
न विन्दन्ति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

ये—जो महापुरुष; विक्षिप्त-इन्द्रिय-धियः—जिनकी इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि सदैव भौतिक अवस्थाओं के कारण विक्षुब्ध रहती हैं; देवाः—देवताओं की तरह; ते—ऐसे व्यक्ति; स्व-हृदि—अपने हृदय में; स्थितम्—स्थित; न—नहीं; विन्दन्ति—जानते हैं; प्रियम्—अत्यन्त प्रिय; शश्वत्—निरन्तर; आत्मानम्—भगवान् को; किम् उत—क्या कहा जाये; अपरे—अन्यों के विषय में।

यद्यपि देवताओं को स्वर्गलोक में स्थित होने का लाभ मिलता है, किन्तु उनके मन, इन्द्रियाँ तथा बुद्धि भौतिक अवस्थाओं से विक्षुब्ध रहती हैं। अतएव ऐसे महापुरुष भी हृदय में निरन्तर स्थित भगवान् का साक्षात्कार नहीं कर पाते। तो फिर अन्यों के विषय में, यथा मनुष्यों के विषय में, क्या कहा जाय जिन्हें बहुत ही कम लाभ प्राप्त हैं?

तात्पर्य : वस्तुतः भगवान् हर एक के हृदय में सदैव स्थित रहते हैं (ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशोऽर्जुन

तिष्ठति) । लेकिन हम अपनी भौतिक चिन्ताओं के कारण जो इस भौतिक जगत में अनिवार्य हैं, भगवान् को समझ नहीं पाते, यद्यपि वह हमारे सन्निकट स्थित होते हैं। जो लोग सदैव भौतिक अवस्थाओं से विक्षुब्ध रहते हैं उनके लिए योग विधि की संस्तुति की जाती है जिससे वे अपने हृदय में स्थित भगवान् पर अपना मन केन्द्रित कर सकें। *ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः।* चूँकि भौतिक जगत में मन तथा इन्द्रियाँ सदा विक्षुब्ध रहती हैं अतएव मनुष्य को धारणा, आसन तथा ध्यान जैसी योग की विधियों से मन को शान्त करके उसे भगवान् में केन्द्रित करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, योग की विधि ईशसाक्षात्कार का भौतिक प्रयास है जब कि भक्ति ईशसाक्षात्कार की आध्यात्मिक विधि है। महाराज खट्वांग ने आध्यात्मिक मार्ग ग्रहण किया अतएव उन्हें किसी भी भौतिक वस्तु में रुचि नहीं रह गई थी। *भगवद्गीता (१८.५५)* में कृष्ण कहते हैं—*भक्त्या मामभिजानाति—*केवल भक्ति के द्वारा मुझे जाना जा सकता है। केवल भक्ति के द्वारा परब्रह्म भगवान् कृष्ण को समझा जा सकता है। भगवान् यह कभी नहीं कहते कि उन्हें योगाभ्यास या दार्शनिक चिन्तन के द्वारा जाना जा सकता है। भक्ति ऐसे सारे भौतिक प्रयासों से ऊपर है। *अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।* भक्ति शुद्ध, होने के कारण ज्ञान या पुण्य कर्म से भी कलुषित नहीं होती।

अथेशमायारचितेषु सङ्गं

गुणेषु गन्धर्वपुरोपमेषु ।

रूढं प्रकृत्यात्मनि विश्वकर्तु-

भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

अथ—अतएव; ईश-माया—भगवान् की माया के द्वारा; रचितेषु—रचे गये; सङ्गम्—अनुरक्ति; गुणेषु—प्रकृति के गुणों में; गन्धर्व-पुर-उपमेषु—जिनकी उपमा गन्धर्वपुर के भ्रम से दी जाती है, यह ऐसे नगर या मकान हैं जो जंगल या पर्वत पर दिखते हैं; रूढम्—अत्यन्त शक्तिशाली; प्रकृत्या—प्रकृति के द्वारा; आत्मनि—परमात्मा में; विश्व-कर्तुः—सारे ब्रह्माण्ड के स्रष्टा की; भावेन—भक्ति से; हित्वा—त्यागकर; तम्—उसकी (भगवान् की); अहम्—मैं; प्रपद्ये—शरण में जाता हूँ।

अतएव मुझे अब भगवान् की बहिरंगा शक्ति अर्थात् माया द्वारा सृजित वस्तुओं से आसक्ति को त्याग देना चाहिए। मुझे भगवान् के ध्यान में संलग्न होना चाहिए और इस तरह उनकी शरण में जाना चाहिए। यह भौतिक सृष्टि भगवान् की माया से सृजित होने के कारण पर्वत पर या जंगल में स्थित काल्पनिक नगर के सदृश है। हर बद्धजीव को भौतिक वस्तुओं से प्राकृतिक आकर्षण एवं आसक्ति

होती है, किन्तु मनुष्य को चाहिए कि इन्हें त्यागकर भगवान् की शरण में जाये।

तात्पर्य : हवाई जहाज द्वारा किसी पर्वतीय क्षेत्र से गुजरते समय आकाश में मीनारों तथा महलों से युक्त कोई शहर दिख सकता है या फिर किसी जंगल में ऐसी वस्तुएँ दिख सकती हैं। यह गंधर्वपुर या मायाजाल कहलाता है। यह समग्र संसार ऐसे ही मायाजाल के सदृश है और हर एक संसारी पुरुष को इससे लगाव होता है। किन्तु कृष्णभावनामृत में उच्च प्रगति के कारण खट्वांग महाराज को ऐसी वस्तुओं में रुचि नहीं रह गई थी। भक्त भले ही ऊपर से संसारी कार्यकलापों में लगा रहे, किन्तु वह अपनी स्थिति को भलीभाँति जानता रहता है। *निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते*—यदि कोई ईश्वर की प्रेमाभक्ति से सम्बन्धित सारी भौतिक बातों में लगा रहता है तो वह युक्तवैराग्य में स्थित होता है। इस भौतिक जगत में अपनी इन्द्रियतुष्टि के लिए कुछ भी स्वीकार नहीं करना चाहिए—हर वस्तु भगवान् की सेवा के लिए होनी चाहिए। आध्यात्मिक जगत की यही मानसिकता है। महाराज खट्वांग उपदेश देते हैं कि मनुष्य भौतिक आसक्ति त्यागकर भगवान् की शरण ग्रहण करे। इस तरह जीवन में सफलता प्राप्त हो सकती है। यह शुद्ध भक्तियोग है जिसमें *वैराग्य-विद्या* अर्थात् विरक्ति तथा ज्ञान निहित हैं।

वैराग्यविद्यानिजभक्तियोग

शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः ।

श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी

कृपाम्बुभिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥

“मैं उन भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ जो अब भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए हैं। वे कृपा के सिन्धु हैं और हमें विरक्ति, ज्ञान तथा अपनी भक्ति सिखलाने आये हैं।” (*चैतन्य चन्द्रोदय नाटक ६.७४*)। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने इस वैराग्यविद्या के आन्दोलन का सूत्रपात किया जिससे मनुष्य अपने को भौतिक संसार से विरक्त करके प्रेमा-भक्ति में लगाता है। भक्ति का कृष्णभावनामृत आन्दोलन ही वह एकमात्र विधि है जो इस जगत में हमारे मिथ्या अहंकार का निराकरण कर सकती है।

इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया ।

हित्वान्यभावमज्ञानं ततः स्वं भावमास्थितः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; व्यवसितः—दृढ़ निश्चय करके; बुद्ध्या—बुद्धि से; नारायण-गृहीतया—नारायण की कृपा से पूर्णतया वशीभूत; हित्वा—त्यागकर; अन्य-भावम्—कृष्णभावनामृत के अतिरिक्त अन्य चेतना; अज्ञानम्—जो निरंतर अज्ञान तथा अंधकार ही है; ततः—तत्पश्चात्; स्वम्—अपनी मूल स्थिति, जो कृष्ण के नित्यदास के रूप में है; भावम्—भक्ति में; आस्थितः—स्थित।

इस तरह भगवान् की सेवा करने में अपनी उन्नत बुद्धि से महाराज खट्वांग ने अज्ञानमय शरीर से मिथ्या सम्बन्ध का परित्याग कर दिया। अपनी नित्य सेवक की मूल स्थिति में रहकर उन्होंने भगवान् की सेवा करने में अपने को संलग्न कर लिया।

तात्पर्य : जब वास्तव में कोई कृष्णभक्त बन जाता है तो उस पर किसी को शासन करने का अधिकार नहीं रह जाता। कृष्णभावनाभावित होने पर वह अज्ञान के अंधकार में नहीं रहता और ऐसे अज्ञान से मुक्त होने पर वह अपनी मूल स्थिति में आरूढ़ होता है। जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णोर 'नित्यदास'। जीव भगवान् का नित्यदास होता है और जब वह सभी प्रकार से भगवान् की सेवा में लग जाता है तो उसे जीवन की सिद्धि प्राप्त होती है।

यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् ।

भगवान्वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; तत्—वैसा; ब्रह्म परम्—परब्रह्म, भगवान् कृष्ण; सूक्ष्मम्—आध्यात्मिक, सारी भौतिक धारणाओं से परे; अशून्यम्—निर्विशेष या शून्य नहीं; शून्य-कल्पितम्—कम बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा शून्य करके कल्पित; भगवान्—भगवान्; वासुदेव—कृष्ण; इति—इस प्रकार; यम्—जिसको; गृणन्ति—गायन करते हैं; हि—निस्सन्देह; सात्वताः—शुद्ध भक्तगण।

वे बुद्धिहीन मनुष्य जो भगवान् के निर्विशेष या शून्य न होने पर भी, उन्हें ऐसा मानते हैं उनके लिए भगवान् वासुदेव कृष्ण को समझ पाना अत्यन्त कठिन है। अतएव शुद्ध भक्त ही भगवान् को समझते तथा उनका गान करते हैं।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत में (१.२.११) कहा गया है—

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते ॥

परम सत्य का साक्षात्कार तीन अवस्थाओं में किया जाता है—ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् रूप में। भगवान् हर वस्तु के उद्गम हैं। ब्रह्म भगवान् का आंशिक स्वरूप है और वासुदेव भी, जो सर्वत्र एवं प्रत्येक हृदय में स्थित परमात्मा है, भगवान् की प्रगत अनुभूति है। किन्तु जब कोई भगवान् को समझ जाता है

(वासुदेवः सर्वमिति) और जब कोई यह अनुभव करता है कि वासुदेव परमात्मा तथा निराकार ब्रह्म दोनों हैं तो उसे पूर्ण ज्ञान होता है। इसीलिए अर्जुन ने कृष्ण को परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् कहा है। परं ब्रह्म शब्द निर्विशेष ब्रह्म की तथा सर्वव्यापी परमात्मा की शरण का निर्देश करते हैं। जब कृष्ण कहते हैं त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति तो इसका अर्थ है कि सिद्ध भक्त पूर्ण साक्षात्कार के बाद भगवद्धाम को जाता है। महाराज खट्वांग ने भगवान् की शरण स्वीकार कर ली थी, फलस्वरूप उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के नवम स्कंध के अन्तर्गत “अंशुमान की वंशावली” नामक नवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।